पुस्तकालय तेरे रूप अनेक



ऋचा गोस्वामी

मुझे अपने स्कूल के शिक्षकों में जो बहुत अच्छे से याद हैं, स्कूल की लाइब्रेरी इंचार्ज। एक तो वो हमेशा मुस्कराकर बात करती थीं और दूसरा उनके पास पुस्तकों का एक ऐसा ख़ज़ाना था, जिसमें मेरी बेहद दिलचस्पी थी। वो भी आतुर थीं मुझसे और मेरे जैसे हर विद्यार्थी से उस ख़ज़ाने को बांटने के लिए। यह शायद अहम कारण है कि मेरी दिलचस्पी किताबों में न केवल बनी रही बल्कि साल दर साल बढ़ती गई।

मेरे स्कूल का पुस्तकालय न ज़्यादा बड़ा न बहुत छोटा ही था। हां, पर 7–8 साल की उम्र में जब मैं पहली बार वहां गई थी तब ज़रूर बहुत विशाल लगा था। एक बड़ा सा हॉल जिसमें 50 लोग आराम से बैठकर किताबें पढ़ सकते थे। चारों तरफ़ ऊंची रेक जिनमें शीशे लगे थे। एक तरफ़ टेल मी हाऊ? व्हाई? व्हैन? आदि का कलेक्शन था। मैंने तो ज़्यादा कभी उन्हें पढ़ा नहीं पर पृष्ठ पलटना और वो चित्र देखना भी काफ़ी मज़ेदार था। दूसरी तरफ़ साहित्य जो कि उम्र के हिसाब से लगा हुआ था, और उसके बाद वो किताबें आती थीं जिनसे मेरा वास्ता ग्यारहवीं में ही पड़ा। नज़र पहले भी पड़ी थी क्योंकि वो दिखने में ही दैत्याकार थीं। छोटी क्लासों में मैडम लाइन से किताब बांट देती थी, पर कुछ साल बाद किताब चुनने की आज़ादी मिल गई। कई बार बहुत देर रैक के सामने खड़े होकर किताबों को देखते रहते पर कौन सी किताब लेनी है यह चुन नहीं पाते थे। ऐसे में डांट भी पड़ती थी क्योंकि पीरियड तो चालीस मिनट का ही था। अब लगता है कि दस किताब पलटकर खुद से चुनने की बच्चों के लिए कितनी अहमीयत है।

हमारी लाइब्रेरी इंजार्ज की एक और ख़ास बात यह थी कि उन्हें ज़्यादातर बच्चों के स्तर का पूरा ध्यान रहता था। और वो सबको आगे बढ़ने के लिए उकसाती थीं। ''कब तक एनिड ब्लाइटन पढ़ोगी, अब हार्डी ब्वाएज़ पढ़कर देखो।'' हम मना करते पर वो दो–तीन बार में समझा ही लेतीं कि हमें पढ़कर देखना ही चाहिए।

मेरा स्कूल इंग्लिश मीडियम था। और अंग्रेज़ी को बढ़ावा देने के लिए हिंदी को दबा दिया जाता है। बहुत से शिक्षकों के कालांश में हिंदी बोलने पर मूल्य दंड लगता था। ऐसा ही सौतेला व्यवहार पुस्तकालय में हिन्दी साहित्य के साथ होता था। छोटे बच्चों के लिए हिन्दी में कुछ था भी ऐसा तो मुझे याद नहीं पड़ता पर प्रेमचन्द जैसे प्रमुख लेखकों, हिन्दी व्याकरण की किताबें आदि थीं। पर यह रैक ऐसे कोने में थी जहां नज़र, पहुंचना भी कठिन था।

पिछले कुछ सालों में मैंने बहुत से स्कूल देखे और उन पुस्तकालयों के बारे में यहां कुछ बातचीत करना चाहती हूं।

दिल्ली के एक नामी प्राइवेट स्कूल से बात शुरू करें। यहां स्कूल की बिल्डिंग तीन हिस्सों में हैं– नर्सरी से तीसरी एक बिल्डिंग में, चौथी से आठवीं दूसरी में और नवीं से बाहरवीं तीसरी बिल्डिंग में। प्रत्येक हिस्से में लाइब्रेरी उस उम्र के बच्चों के लिए। बाद में मैंने जाना कि बहुत से स्कूलों में अब छोटे बच्चों के लिए अलग से लाइब्रेरी होती है।

एक प्रसिद्ध स्कूल में हमने देखा कि लाइब्रेरी के एक कोने में छोटे बच्चों की किताबोंवाली दो छोटी रैक थीं। यहां जमीन पर बैठने के लिए भी जगह थी और कम ऊंचाई के कुर्सी मेज़ भी। एक और ख़ास बात जो इस लाइब्रेरी में हमने देखी वो थी सफ़ाई। कहीं धूल का एक कण भी नहीं। कोई किताब उपेक्षित और धूल खाई हुई नहीं थी।

एक प्रसिद्ध स्कूल में हमने देखा कि लाइब्रेरी के एक कोने में छोटे बच्चों की किताबोंवाली दो छोटी रेक थीं। यहां ज़मीन पर बैठने के लिए भी जगह थी और कम ऊंचाई के कुर्सी मेज़ भी। एक और ख़ास बात जो इस लाइब्रेरी में हमने देखी वो थी सफ़ाई। कहीं धूल का एक कण भी नहीं। कोई किताब उपेक्षित और धूल खाई हुई नहीं थी। बच्चे अपनी चप्पलें उतारकर पुस्तकालय में आते थे। कुछ और नहीं पर यह एक मानसिक तैयारी तो है ही कि अब मैं पुस्तकालय में हूं और यह एक ख़ास जगह है।



दिल्ली के एक प्राथमिक स्कूल में मैंने लाइब्रेरी की अवधारणा को बेहद विस्तृत होते देखा। यहां इसे रिसोर्स रूम कहा जाता है। इस कमरे में किताबों के अलावा ख़ूब सारे गेम्स, पज़ल्स, शिक्षण सामग्री बच्चों के प्रोजेक्ट्स आदि भी रहते हैं।

एक दूसरे स्कूल में मैंने देखी पिक्चर लाइब्रेरी। इसे स्कूल के सभी शिक्षक मिलकर संभालते हैं। जिसे जो पत्रिका (पुरानी और लाइब्रेरी के बाहर की) हाथ लगी उसमें से चित्र काटकर रख लिए। हफ़्ते में एक बार कुछ शिक्षक मिल कर बैठते हैं और उन्हें वर्गीकृत करके रख देते हैं। इनका उपयोग बच्चे और शिक्षक सभी कर सकते हैं।

एक और साधारण सी लाइब्रेरी की ख़ास बात याद आ गई जिसका ज़िक्र होना चाहिए। बच्चों द्वारा प्रकाशित पत्रिकाएं! यहां बच्चे साल में दो बार पत्रिका निकालते हैं। जिसमें कहानी, कविता, लेख, चित्रांकन सभी बच्चे स्वयं करते हैं। और हां, इस पत्रिका की प्रतियां नहीं होतीं क्योंकि फाइनल प्रति तक पहुंचने के लिए कई ड्राफ़्ट बनते हैं और प्रति बनाने की शायद हिम्मत नहीं बचती।

स्कूल लाइब्रेरी से हटकर क्लास लाइब्रेरी की बात करें। इसके असंख्य मॉडल हो सकते हैं। सबसे पहला तो जो मेरी छठी कक्षा की शिक्षिका ने किया। उन्होंने हम सबसे एक–एक पुस्तक लाकर जमा करने को कहा और बस लाइब्रेरी शुरू!

फिर दूसरा तरीक़ा है जिसमें आप स्कूल लाइब्रेरी से ही किताबें लाकर अपनी कक्षा में रखें और बच्चों को पढ़ने का समय दें।

किताबें कहां कैसे रखी हैं यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। कुछ कक्षाओं में किताबें अलमारी में रखी जाती हैं और चाबी शिक्षक के पास रहती है। अब जब मैडम का मन होगा तो किताब हाथ आएगी। कुछ कक्षाओं में चाबी किसी बच्चे के पास रहती हैं। यहां भी डर यही है कि आप बच्चों में से किसी एक को शिक्षकीय व्यवहार सौंप रहे हैं।

पर कुछ शिक्षक हिम्मत दिखाकर किताबें बाहर रख देते हैं कि बच्चे जब चाहें किताब उठाएं, पन्ने पलटें और शायद पढ़ें भी। ऐसी ही एक क्लास लाइब्रेरी चलानेवाली शिक्षिका ने बताया कि अब उनके बच्चे अपने विषय का काम ख़त्म करके कई बार स्वयं ही किताब उठाकर पढ़ने लगते हैं। यह स्थिति हमको पसंद आ सकती है। पर यह न भूलें कि यहां

जो छात्राएं पढ़ नहीं पातीं वो भी किताबें ले रही थीं, क्योंकि उन्हें किसी से मांगना नहीं पड़ रहा था। ऐसी ही एक छात्रा थी संगीता जो रोज़ गुब्बारों के चित्रोंवाली किताब लेती। यदि कोई और लेता तो झगड़ा भी कर लेती। एक दिन मैंने उसे उसमें से कहानी पढ़कर सुनाई और तब से किताब और संगीता का रिश्ता बहुत गहरा हो गया।

तक पहुंचने से पहले यह ज़रूरी है कि बच्चों को ख़ूब समय और प्रोत्साहन देकर किताबों से जोड़ें।

क्लास लाइब्रेरी का एक मॉडल है कक्षा में रस्सी बांधकर किताब उस पर लटका दें। रंग–बिरंगे कवर पेज खुद ही बच्चों को अपनी तरफ़ खींचेंगे।

यह तरीक़ा संस्थाओं और चल पुस्तकालय चलानेवालों में ख़ूब प्रचलित है। मैंने भी अपनी कक्षा में ऐसा किया और दो सुखद अनुभव यहां बता रही हूं। मैं उस समय तीसरी कक्षा पढ़ा रही थी और मैंने पाया कि–

- बहुत कम समय में मेरी कक्षा की छात्राओं (केवल लड़कियों का स्कूल था इसलिए) ने सुबह आकर किताबें सजाने और दोपहर में उन्हें सम्भालने की ज़िम्मेदारी ले ली।
- जो छात्राएं पढ़ नहीं पातीं वो भी किताबें ले रही थीं, क्योंकि उन्हें किसी से मांगना नहीं पड़ रहा था। ऐसी ही एक छात्रा थी संगीता जो रोज़ गुब्बारों के चित्रोंवाली किताब लेती। यदि कोई और लेता तो झगड़ा भी कर लेती। एक दिन मैंने उसे उसमें से कहानी पढ़कर सुनाई और तब से किताब और संगीता का रिश्ता बहुत गहरा हो गया।

अब अंत में हम सरकारी स्कूलों की बात करें। मैं यहां तीन उदाहरणों के ज़रिए स्थिति बयान करना चाहती हूं। पाठकों से निवेदन है कि सामान्यीकरण करने से बचें।

सरकारी स्कूल में पुस्तकालय के नाम पर कुछ किताबें तो ज़रूर आती हैं। पर जगह के अभाव से उन्हें एक अलमारी में बंद करके रखा जाता है। सबसे बड़ा डर तो प्रधानाध्यापकों और शिक्षकों को ऑडिट का है। यदि बच्चों को किताबें दी गईं और वो फट गईं या खो गईं तो इसकी जवाबदेही किसकी होगी? इस डर से अलमारियों पर लगे ताले कम ही खुलते हैं और किताबों को बच्चों का स्पर्श कम ही मिलता है।

ऐसी स्थिति में आशा की एक किरण नज़र आई दिल्ली के ही एक प्राथमिक विद्यालय में, यहां ताला हर दो महीने में खुल जाता है और किताबें शिक्षकों के नाम पर इश्यू हो जाती हैं। अब जवाबदेही और ज़िम्मेदारी बंट गई। इस स्कूल में भी कुछ शिक्षक किताबों को छोटे ताले के पीछे छिपाने की कोशिश करते हैं।

तीसरा सरकारी स्कूल जिसका ज़िक्र मैं यहां करना चाहती हूं वह दसवीं तक का था। और यहां बड़ा सा कमरा पुस्तकालय के नाम था। मैंने इस स्कूल में तीन महीने बतौर प्रशिक्षणार्थी काम किया। मैं अपने तीसरी के बच्चों को यहां ले जाना चाहती थी। बड़ी मुश्किलों से इजाज़त मिली और जाकर पाया कि बाल साहित्य के नाम पर एनबीटी की कुछ फटी हुई और कुछ अंग्रेज़ी की किताबें ही वहां थीं।

पुस्तकालय की इस पूरी चर्चा में अब तक अनकही पर महत्त्वपूर्ण बात है पढ़ने की क्षमता। जब मैं पांचवीं कक्षा में ऐसे बच्चे देखती हूं जो पढ़ नहीं पाते तब सर्व शिक्षा अभियान की सार्थकता पर शक होने लगता है। ऐसे में पुस्तकालय की अहमियत को कम आंकने की भूल हम कर ही नहीं सकते। ख़ूब जानी–पहचानी पर वास्तविक शिक्षण में उपेक्षित बात पर ख़त्म कर रही हूं ''बच्चे पढ़–पढ़कर ही पढ़ना सीखते हैं।''

ऋचा गोस्वामी, विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र, उदयपुर में कार्यरत।